25

वैदिक विज्ञान

हृदयरंजन शर्मा

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के आधारभूत ग्रंथ वेद विश्व के सम्पूर्ण लिखित साहित्य में प्राचीनतम धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित हैं। भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक व तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से इस तथ्य का पता चलता है कि विश्व की अति प्राचीन भाषाओं के रूप में ग्रीक, लैटिन तथा वैदिक-संस्कृत भाषायें परिगणित एवं परिभाषित हुई हैं और इनमें से भी प्राचीनतम भाषा के रूप में मनीषी विद्वानों ने वैदिक-संस्कृत को स्थान दिया है। वैदिक साहित्य के मूल ग्रंथ इसी भाषा में निबद्ध हैं। हमारे ऋषियों एवं मुनियों ने अनादि काल से गुरुशिष्य परम्परा के माध्यम से अधीत एवं सुरक्षित ज्ञान एवं विज्ञान के इस अजस्र (कभी समाप्त न होने वाले) भंडार को आगे आने वाली पीढ़ियों के कल्याण के लिए हजारों हजार साल पहले इन ग्रंथों में लिपिबद्ध किया।

आज का युग विज्ञान का युग है। आधुनिक विज्ञान ने पूरे विश्व में सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास की धारा को वह गुणात्मक ऊँचाई प्रदान की है जहाँ खड़े होकर हम समूचे आसमान को नापने की सार्थक परिकल्पना को सजीव रूप प्रदान करने हेतु अग्रसर हो पा रहे हैं। विज्ञान का सबसे प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष है सच को प्रमाणित कर उसे उजागर करना। यह आधुनिक विज्ञान के उच्च शोध का ही चमत्कार है जिसने यह प्रामाणिक रूप से सिद्ध किया है कि आज के अति समुन्नत आधुनिक विज्ञान में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन एवं दिशा निर्देश देने की क्षमता यदि किसी में है तो वह केवल वेदों में निहित पराविज्ञान के इन सिद्धान्तों एवं रहस्य सूत्रों में है जो आज भी सारी सृष्टि के रहस्य को अपने में संजोए हुए हैं। यही कारण है कि आज विश्व के सभी अमेरिका, जर्मनी, इजराइल आदि विकसित देश वैदिक सिद्धान्त सूत्रों को समझने तथा अधिगत करने के लिए तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। इस सन्दर्भ में मनीषी चिन्तकों का यह मानना है कि वैदिक ज्ञान की इन सूक्ष्म परतों को अधिकाधिक रूप में जो सबसे पहले खोल पायेगा वही इस पृथ्वी पर महाशक्ति के रूप में उभरकर एकछत्र राज करने का अधिकारी होगा।

वेदों में निहित ज्ञान एवं विज्ञान को समझने एवं अध्ययन व शोध के माध्यम से उपयोग में लाने के प्रति विश्व के विकसित देशों में जहाँ कड़ी प्रतिस्पर्धा का जोर एवं शोर है वहीं आधुनिक भारत का पढ़ा-लिखा जनमानस प्रायेण (अधिकतर रूप में) पाश्चात्य संस्कृति एवं विज्ञान के प्रभाव से भ्रांत एवं आक्रान्त होता हुआ अपने को धन्य सा मान बैठा है। किन्तु सावधान! इससे पहले कि पाश्चात्य देशों के झरोखे से वैदिक ज्ञान एवं विज्ञान को आयात करने की नौबत उत्पन्न हो, हमें अपने ऋषि-मुनियों एवं पूर्वजों की इस बहुमूल्य सम्पत्ति को बचाने हेतु आगे आना है और इसे बचाना है। सारे विश्व में "बौद्धिक सम्पदा के अधिकार" के माध्यम से वैदिक ज्ञान एवं विज्ञान के विविध विषयों

को 'पेटेण्ट' कराने का अभियान छिड़ा हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में वेदों को मात्र पूजा-पाठ की गठरी समझने के भ्रम से बाहर निकलकर हमें अब अपनी आँखें खोल ही लेनी चाहिए।

1. वेद का अष्टादश विद्या के रूप में विस्तार–

वेदों की ज्ञान, विज्ञान परक उपर्युक्त पृष्ठभूमि के आलोक में अब उनके (वेदों के) "अष्टादश-विद्या" (अठारह विद्या) के रूप में विभक्त विषयगत विस्तार का निरूपण निम्नांकित रूप से प्रस्तुत है—

1. **चार वेद**–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद (ज्ञान एवं विज्ञान की अमृतरूप ईश्वरीय परावाक्)। उपर्युक्त चारों वेदों से सम्बद्ध संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् नामक ग्रन्थ प्रत्येक वेद के चार-चार भाग हैं।
2. **छह वेदांग**–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष। (वेदों में निहित रहस्यार्थ को समझने में सहायक शास्त्र)
3. **चार उपांग**–पुराण, न्याय, मीमांसा एवं धर्मशास्त्र। (उपर्युक्त छह सहायक शास्त्रों को समझने के शास्त्र)
4. **चार उपवेद**–आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद व अर्थशास्त्र (कला एवं विज्ञानपरक चौंसठ लोक कलाओं का संग्रह)। यह अर्थशास्त्र प्रमुख रूप से अनेक लौकिक ज्ञान एवं विज्ञान से सम्बन्धित डिप्लोमा-स्तर के तकनीक का संग्रह शास्त्र है।

उपर्युक्त अठारह विद्याओं का पृथक् रूप से ज्ञान-विज्ञान परक विवेचन अनेक ग्रन्थों में स्वतन्त्र रूप से निरूपित हुआ है। यहाँ वैदिक विज्ञान के कतिपय महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है—

वेद एवं वास्तुशास्त्र विज्ञान

वास्तु विज्ञान आज सारे विश्व में केन्द्रीभूत मुख्य विषय के रूप में अध्ययन-अध्यापन एवं शोध का अंग बना हुआ है। वास्तु विज्ञान के अन्तर्गत सामान्य रूप से किसी स्थान और भवन के अन्तःबाह्य स्वरूप की परिकल्पना, दिशा, ग्रहस्थिति आदि के परिप्रेक्ष्य में उस प्रकार से निर्धारित की जाती है जिससे गृह स्वामी को अधिकाधिक मात्रा में सुख-शान्ति तथा समृद्धि की प्राप्ति हो सके। आधुनिक वास्तु विज्ञान जिन महत्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर किसी रिहायशी मकान, व्यावसायिक प्रतिष्ठान या जमीन के मानचित्र, अन्तः सज्जा, बाह्य परिसर संरचना आदि की रूपरेखा को निर्धारित करता है, उसके मूल सिद्धान्त एवं प्रक्रिया सूत्र वेदों में सृष्टि-विज्ञान, यज्ञ-विज्ञान एवं दिग्देशकाल-विज्ञान के सन्दर्भ के साथ विस्तृत रूप से विवेचित हुए हैं। वैदिक विज्ञान किसी भी वस्तु या विषय का, आधिभौतिक (worldly gross existance), आधिदैविक (vital subtle existence) व आध्यात्मिक (spiritual universal existence) पक्षों के समग्र स्वरूपों के साथ, विवेचनपरक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। इस सिद्धान्त के आधार पर स्वीकृत किसी भी कार्य-विधान की प्रक्रिया स्थायी रूप से अनुकूल व सुखद परिणाम देने में समर्थ होती है। इसीलिए हमारे प्रामाणिक आचार्यों ने कहा है कि 'सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति' अर्थात् वेदमूलक ज्ञान एवं विज्ञान ही समस्त व्यावहारिक जीवन-प्रक्रिया के मानक हैं।

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार वास्तुविज्ञान की मूलधुरी वह 'शक्ति स्रोत' (Divine Consciousness)

है जो अखण्ड (व्यापक) रूप से इस सृष्टि में क्रियाशील है और भवन या प्रतिष्ठान में आवश्यकता के अनुसार अनुकूल-प्रतिशत की मात्रा के साथ प्रतिष्ठित एवं प्रवाहित किया जाता है। यह सारी सृष्टि पाँच तत्त्वों (आकाश, वायु, तेज, जल व पृथ्वी) के गुणात्मक अनुकूल मिश्रण से निर्मित एवं व्यवहृत है। इन पाँचों तत्त्वों में अत्यन्त तेजोरूप उग्र जीवनी शक्ति पूरे ब्रह्माण्ड में प्रवहमान है। वेदों में इसे रुद्र के रूप में परिभाषित किया गया है। इस अत्यन्त उग्र जीवनी शक्ति (vital force of consciousness) को अभीष्ट सुख-शान्ति एवं समृद्धि के लिए अनुकूल मात्रा में सीमित एवं परिवर्तित करके उपयोग में लाने की सतत प्रक्रिया ही वास्तु विज्ञान का मूल है। जैसे लोक व्यवहार में बड़ी मात्रा में विद्युत् उत्पादन करके हाई वॉल्टेज के साथ उसका सम्प्रेषण देश के एक क्षेत्र से सुदूर दूसरे क्षेत्र तक किया जाता है और इससे घरेलू या व्यावसायिक प्रतिष्ठान के उपयोग के लिए ट्रांसफार्मर के माध्यम से अनुकूल वोल्टेज के मानक में परिवर्तित एवं सीमित करके सुख-शान्ति व समृद्धि हेतु उपयोगी बनाया जाता है, उसी प्रकार वेदोक्त वास्तु-विज्ञान विधान में गृह आदि स्थान अत्यन्त समुन्नत ट्रांसफार्मर के रूप में परिभाषित हुये हैं।

वेदों में सृष्टि में व्याप्त "दिव्य प्राण शक्ति" (divine vital force) को वास्तु (आच्छादक तत्त्व) के रूप में निदर्शित किया गया है। इस शक्ति के अधिष्ठाता देवता को भी 'वास्तु' या 'वास्तव्य' नाम से निरूपित किया गया है। ये वास्तु-देवता और कोई नहीं अपितु वे 'रुद्र' देव ही हैं जिन्हें वैदिक मन्त्रों में सर्वोत्तम भाव से नमस्कार/नमस्ते (नमन) किया गया है। इसी आधार पर उस दिव्य जीवनी शक्ति को धारण करने वाली इकाई के रूप में किसी स्थान या भवन को वास्तु विज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकों में वास्तु पुरुष के रूप में जिस अधोमुख भयंकर राक्षस की कल्पना की गई है वह और कोई नहीं, इन्हीं अत्यन्त उग्र एवं तेजोमय "रुद्र" देव के भीषण घोर रूप का पुरुषाकृति-भाव ही है। इस अत्युग्र रुद्रशक्ति को वास्तु-विज्ञान के विधान से शान्त (सुख-समृद्धि प्रदायक जीवनी शक्ति के मानक में परिवर्तित) करके अग्निस्वरूप से घर में स्थापित किया जाता है। इसी क्रम में जिस प्रकार बिजली के कनेक्शन की सुविधा बराबर बनाये रखने की एक अनुशासित प्रक्रिया का नियम है उसी प्रकार भवन एवं प्रतिष्ठान आदि में इस दिव्य जीवनी शक्ति के निर्बाध प्रवाह एवं संचार के लिए अनिवार्य रूप से उपायों को सम्पन्न करना आवश्यक होता है। वेदों में यह उपाय संस्कार-कर्म, तप-कर्म, योग-साधन आदि रूप में विहित हुए हैं।

इन सारे विहित साधनरूप उपायों में सबसे प्रधान रूप में कर्त्तव्य-रूप-कर्म का स्थान आता है। यदि कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्य रूप कर्म को मन, वाणी और क्रिया के समन्वय (एक-दूसरे के पूरक) के साथ ईमानदारी से सम्पन्न करता है तो उसे प्रायः अन्य उपायों को करने की कम से कम आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण स्वरूप छात्र का कर्त्तव्यरूप कर्म पढ़ना, अध्यापक का पढ़ाना, व्यवसायी का व्यवसाय और अधिकारियों एवं कर्मचारियों का प्रशासनिक आदि कार्य है। जीवन के इन विविध क्षेत्रों में व्यक्ति जब अपने निर्धारित कर्म को सत्यभाव से अपनाकर नियमित रूप से कार्य करता रहता है तो उसे वेतन आदि के रूप में धनराशि तो मिलती ही है, साथ ही ब्याज-रूप में वह दिव्य-जीवनी शक्ति भी सूक्ष्म रूप में उत्पन्न होती है जो शारीरिक, मानसिक आदि स्तर पर स्वस्थ रहने में सहायक होते हुए मनुष्य के सुख-शान्ति एवं समृद्धि के मार्ग को सदा प्रशस्त करने (फैलाने) में सहायक सिद्ध होती है।

वैदिक वास्तु-विज्ञान के अन्तर्गत किसी भी प्राणी या जीव के तीन वास्तु (गृह/घर) मुख्य रूप से बतलाए गए हैं। इनमें प्रथम वास्तु है हमारा यह शरीर, दूसरा है ईंट पत्थरों आदि से निर्मित वह भवन (घर) जिसमें इस जीवनी-

शक्ति को तेजोरूप देवता के रूप में प्रतिष्ठित करके हम रहते हैं तथा तीसरा वास्तु (घर) है यह पंचतत्त्व से निर्मित पूरा संसार जिसमें रहकर हम यथानियम अपना सारा व्यवहार करते हैं।

वास्तु के इन तीनों स्तरों को अच्छी प्रकार से समझकर और उनमें अनुशासित होकर व्यक्ति अपने साथ परिवार, समाज, राष्ट्र और पूरे विश्व को सुख-शान्ति एवं समृद्धि का उपहार देता हुआ अन्ततः अपने ''तुरीय'' (चतुर्थ) रूप उस पूर्णधाम (ईश्वरधाम) का अधिकारी बनता है जहाँ से वह इस जगत् में कुछ दिनों के लिए आया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक-विज्ञान आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक स्तर पर अन्तःबाह्य रूप सुन्दर तेजोमय घर में मनुष्य को सदा रहने तथा रखने का पूर्ण विकसित विज्ञान है।

वेदों में सखिभाव का विज्ञान (The Science of Friendship in Vedas)

वेदों में सखिभाव के विज्ञान का निरूपण बड़े ही गम्भीर एवं रोचक रूप में किया गया है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और जीवन के विविध क्षेत्रों में मित्रजनों का सद्भाव एवं सहयोग कठिन से कठिन कार्य को सरलता से सुगम बना देता है। मित्र अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें अधिकतर जहाँ बाह्य व्यवहार के क्रम से सम्बद्ध होते हैं वहीं कुछ व्यक्तिगत जीवन के भी सच्चे साथी हो जाते हैं। संसार में सामान्यतः इस प्रकार के मित्रों एवं आत्मीयजनों से सम्बन्ध एवं सहयोग का दायरा जब तक अधिभौतिक जीवन का व्यवहार है तब तक का ही रह पाता है।

परन्तु वेदों में सखिभाव के इस सम्बन्ध एवं सहयोग का दायरा असीम रूप में निदर्शित हुआ है। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार हमारा सबसे आत्मीय सखा (मित्र) वह है जो जागते सोते हमारे साथ रहता है, सहयोग करता है और बिना माँगे ही तन-मन-धन से हमें और अधिक शक्ति सम्पन्न करने हेतु सदा जागता रहता है, कभी प्रमाद नहीं करता। इस प्रकार के समस्त स्वार्थ-रहित गुणों से सम्पन्न हमारा परम-सखा और कोई नहीं अपितु श्वास-प्रश्वास रूप यह अपना प्राण (vital force) ही है। यह प्राणरूप सखा हमें सन्मार्ग (कर्त्तव्यरूपकर्म) पर चलने हेतु सदा ही प्रेरित करता रहता है। यह हमारे जीवन का सच्चा सलाहकार है[1] तथा लोक-परलोक से सम्बद्ध सुखसमृद्धि को पाना व बनाए रखना इसके बिना कथमपि सम्भव नहीं है।[2]

किन्तु हम इससे परिचित न होने के कारण लोक व्यवहार में अक्सर मनमानी करते रहते हैं और इसके दुष्परिणाम स्वरूप शारीरिक व मानसिक रूप से पीड़ित (तनावयुक्त) होकर सच्ची सुख-शान्ति से वंचित होते हैं। हमारे अन्तःबाह्य अस्तित्व से जुड़ा यह सखा जीवन के व्यवहार क्रम में हमें सजग रहने हेतु सदा आवाज देता रहता है परन्तु बाह्य प्रपञ्च के कल्पित जाल में उलझे रहने के कारण हम उसकी आवाज को उसी प्रकार से नहीं सुन पाते जिस प्रकार से ज्वर पीड़ित व्यक्ति स्वादिष्ट व्यंजन के स्वाद का अनुभव, रोगजनित जिह्वा विकार के कारण, नहीं कर पाता।

वैदिक विज्ञान का यह सखिभाव हमारे जीवन की अनपेक्षित कुण्ठा, तनाव व अवसाद को हटाने और दूर करने का परम साधन है। फ्रांस आदि अनेक विकसित देशों में इस विज्ञान पर अध्ययन व शोध हो रहा है। गीता में अनुशासित खान-पान, सोने-जागने व युक्ति युक्त कर्मों के सम्पादन से क्रमशः अन्तःबाह्य रूप से स्वस्थ होकर सर्वदुःखनिवारक इसी प्राणसखा से योग (मिलने, परिचय करने) का उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा किया गया है।[3]

वेदोक्त यज्ञविज्ञान (The scientific aspects of rituals in Vedas)

वैदिक विज्ञान के अनुसार यज्ञ, सृष्टि एवं जीवन के समग्र स्वरूप को सुरक्षित, संवर्धित तथा पूर्णता प्रदान करने के अपूर्व साधन हैं। यहाँ अपूर्वसाधन शब्द का तात्पर्य है लोक व्यवहार में प्रत्यक्ष, अनुमान तथा उपमान रूप प्रमाण साधनों से परे (अतिरिक्त) वेदरूप शब्द प्रमाण द्वारा विहित दिव्य-उपाय। वेद विहित इन दिव्य साधनों को 'यज्ञ' के साथ ही याग, होम, जप, दान, त्याग आदि नामों से भी निरूपित किया गया है। इन सभी दिव्य साधनों के द्वारा वह दिव्य-शक्ति (divine energy) उत्पन्न की जाती है जो यागकर्ता के अभीष्ट संकल्प (फल) को पूरा करने के साथ ही सृष्टि के समस्त चेतन अचेतन रूप पदार्थों के लिए कल्याणकारी सिद्ध होती है। वेदों में सर्वकल्याणकारी यागादि कर्मों को ही "धर्म" (righteousness) के रूप में परिभाषित किया गया है। इसीलिए जो यागादि कर्म किसी की हानि करने के उद्देश्य से यदि किए जाएँ तो उन्हें "अधर्म" मानकर उनकी घोर निन्दा की गई है। इस सन्दर्भ में यह ध्यान देने की बात है कि जहाँ धर्म शब्द का शुद्ध अर्थ है "सर्वकल्याणकारी सत्यभाव" (righteousness) वही अंग्रेजी का religion शब्द शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदाय विशेष (cult) का ही वस्तुतः बोध कराता है। और क्योंकि यह 'यज्ञ विज्ञान' शुद्ध सत्यभाव का साधन रूप है। अतः बिना किसी भेद-भाव के सार्वकालिक है, सबके अभ्युदय व कल्याण के लिए विहित है। परन्तु यज्ञ विज्ञान के इन साधनरूप विधानों को अपने आप मनमाने ढंग से अपनाने की अपेक्षा किसी प्रामाणिक विषय विशेषज्ञ 'योग्यगुरु' से अनुमति लेकर ही जीवन के साथ जोड़ना समृद्धिदायक सिद्ध होता है।

व्यवहार में भी समझदार व्यक्ति किसी रोग से पीड़ित होने पर चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकें पढ़कर या मेडिकल स्टोर से अपने मन से दवा न लेकर किसी योग्य चिकित्सक के निर्देश के अनुसार ही दवा एवं पथ्य का नियम से सेवन करके स्वास्थ्य लाभ का भागी बनता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से अब तक 'पूर्ण स्वस्थता' (optimal health) के अन्तर्गत शारीरिक व मानसिक स्वस्थता (physical and mental fitness) को ही पर्याप्त माना जा रहा था परन्तु वैदिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में पूर्ण स्वस्थता (optimal health) के अन्तर्गत शारीरिक व मानसिक स्वस्थता के साथ ही आत्मिक (psychic) स्वस्थता को भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते हुए स्वीकार किया गया है। पूर्ण स्वास्थ्य के इन तीनों पक्षों (शारीरिक-मानसिक व आत्मिक) के व्यवस्थित स्वरूप व समन्वय से ही वास्तविक सुख-शान्ति, समृद्धि एवं पूर्णता की प्रतिष्ठा स्थायी रूप से जीवन के साथ जुड़ती है और अनुभव में आती है जिससे जीवन धन्य हो जाता है। यज्ञ विज्ञान उपर्युक्त तीनों स्तर की स्वस्थता का संरक्षक, संवर्धक और पूरक है। वैश्विक स्तर पर अब इसी को आदर्श प्रतिमान के रूप में मनीषी चिन्तकों द्वारा स्वीकार किया जा रहा है।

यज्ञ विज्ञान का आधिभौतिक स्वरूप

वैदिक यज्ञ विज्ञान के तीन स्तर हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। इनमें आधिभौतिक (Physical aspect) के क्रम में यज्ञ को "द्रव्यं देवता त्यागः (यागः)" के रूप में परिभाषित किया गया है।[4] अर्थात् दूध, दही, घी आदि हविरूप पदार्थों को अग्नि, इन्द्र, प्रजापति आदि यज्ञ से सम्बन्धित देवताओं के लिए पवित्र अग्नि में विधिपूर्वक आहुति प्रदान करने को याग (यज्ञ) कहा जाता है। इस यज्ञ प्रक्रिया में 'स्वाहा' या 'वौषट्' शब्द का उच्चारण करके आहुति प्रदान करने का एक विशेष वैज्ञानिक अर्थ है। आजकल "स्वाहा" शब्द का प्रयोग किसी वस्तु को अग्नि में डालकर जला देने या नष्ट कर देने के अर्थ में प्रायः प्रचलित है। परन्तु वैदिक विज्ञान के अनुसार स्वाहा

शब्द का तात्पर्यार्थ है यज्ञादि से उत्पन्न दिव्य जीवनी शक्ति (divine life energy) को यज्ञकर्ता यजमान में संरक्षित और संवर्धित करना। संस्कृत में "स्व" शब्द का पारिभाषिक अर्थ है मूल सत्ता (original existences) जो हम सभी में प्राण (vital force) के रूप में है, और (अ+नहीं+ओहाक् त्यागे+क्विप्) अर्थात् नञ्पूर्वक त्यागार्थक "हा" धातु से निष्पन्न "अहा" शब्द का अर्थ है नष्ट नहीं होने देना। वौषट् शब्द भी इसी तात्पर्य का है। स्व+अहा=स्वाहा, अर्थात् याग क्रिया से उत्पन्न मूलधन रूप जीवनी-शक्ति के समृद्धि भाव को अपने से अलग न होने देना।

यज्ञ विज्ञान की उपर्युक्त विधा अनुष्ठान परक है और इसे ऋत्विक् (priest) वेदानुष्ठान विशेषज्ञ विद्वान् मिलकर सम्पन्न करते हैं। इसके तीन स्तर हैं, यथा—1. श्रौत याग, 2 स्मार्त याग तथा 3. पद्धति याग।

1. **श्रौत याग**–इसके अन्तर्गत होने वाले याग आदि अनुष्ठान 'श्रौत' नामक अग्नियों में सम्पन्न किये जाते हैं इसलिए इन्हें श्रौत याग कहते हैं। वेद का एक नाम श्रुति है और इन अग्नियों को वेद विहित आधान संस्कार के द्वारा उत्पन्न करके सदा घर में प्रज्वलित रखा जाता है। और इसलिए इन्हें श्रौत अग्नि कहा जाता है। ये अग्नियाँ गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्नि के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें पाँच प्रकार के यज्ञों को सम्पन्न करने का विधान है। इनके नाम हैं—1. अग्निहोत्र, 2. दर्शपूर्णमास, 3. चातुर्मास्य, 4. पशु तथा 5. सोमयाग। ये पाँच प्रकार के याग जगत् में प्रचलित व्यावहारिक-कालमान (practical aspects of time factor) के अन्तर्गत क्रमशः अहोरात्र (24 घंटा), दो पक्ष (15 दिन + 15 दिन से सम्बद्ध शुक्ल एवं कृष्णपक्ष), मास (ऋतुमास चार महीने), अयन (उत्तरायण व दक्षिणायन) तथा संवत्सर (एक वर्ष) के काल-अवयव (divided times) से सम्बद्ध बतलाए गए हैं। इन यागों के माध्यम से यागकर्त्ता उपर्युक्त काल-अवयव (divided times) से सम्बद्ध दिव्य प्राण शक्ति (divine vital energy) को स्वयं में तथा समग्र सृष्टि में क्रमशः विकसित व समृद्ध (enrich) करता है। इसमें संवत्सररूप काल (time) को "व्यावहारिक पूर्ण काल" (a concept of the full time factor for the business of the mundane world) माना गया है।[5] वैदिक विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार इस ब्रह्माण्ड में तथा उसके परे भी व्यापक रूप से 'स्वधा' (अपने में सब कुछ धारण करने की सामर्थ्ययुक्त) विराट् शक्ति विराजमान है। इसे pure consciousness या चित्शक्ति के नाम से भी अभिहित किया जाता है। हम सभी प्राणी इस ईश्वरीय शक्ति के अंश (embodied soul) के रूप में हैं। हमारी यह मूल प्रतिष्ठा सत्, चित् एवं आनन्द स्वरूप है[6] और इस यज्ञ विज्ञान के माध्यम से अपनी मूल सत्ता से सम्बद्ध घर वापसी के लिए 'जब जागे तभी सबेरा' या 'It is never too late to learn' आदि महापुरुषों की उक्तियों का मर्म समझकर हमें इस सच्ची सुख-शान्ति व समृद्धि के साथ जुड़ने में और अधिक भ्रम या विलम्ब नहीं करना है। उपर्युक्त श्रौत अग्नियों से युक्त यज्ञशाला 'ज्ञान-प्रवाह' वाराणसी में प्रतिष्ठित है। इसके दर्शन से हम अनुप्राणित (energized with vital force) हो सकते हैं।

2. **स्मार्त याग**–स्मार्त नामक अग्नि में सम्पन्न किये जाने वाले याग-होम एवं संस्काररूप कर्मों को स्मार्त याग के रूप में जाना जाता है। इस स्मार्त अग्नि को गृह्य एवं आवसथ्य नाम से भी अभिहित किया गया है। इसके अन्तर्गत औपासनहोम, पंचमहायज्ञ आदि आते हैं।

3. **पद्धति याग**–पद्धति याग के अन्तर्गत आजकल प्रचलित रुद्राभिषेक, रुद्रचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी,

विष्णु याग आदि अनेक प्रकार के याग परिगणित हैं। ऋषियों और प्रामाणिक आचार्यों के द्वारा निर्मित पद्धति-ग्रन्थों के नियमानुसार पवित्र लौकिक अग्नि में सम्पन्न किए जाने से इन्हें पद्धति याग या होम कहा जाता है।

यज्ञ विज्ञान का उपर्युक्त त्रिस्तरीय विधान जहाँ विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा सम्पन्न किया जाता है, वहीं सर्व सामान्य के लिए, अत्यन्त सरल एवं सहज रूप में "कर्त्तव्यरूपकर्म" ही यज्ञ का प्रतिमान विहित हुआ है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का संविधान सम्मत जो कर्त्तव्य निर्दिष्ट है उसे वह मन-वाणी और कर्म से निष्ठापूर्वक यदि सम्पन्न करता है तो वह समान रूप से यज्ञ को ही सम्पन्न करते हुए अभीष्ट फल को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। यह अभीष्ट फल क्रमशः अन्तः बाह्य रूप व्यक्तित्व विकास (personality development) के रूप में फलीभूत होता हुआ व्यक्ति को सुख-शांतिमय समृद्धि में प्रतिष्ठित करता है।" उपर्युक्त आधिभौतिक यज्ञ के लक्षण में निर्दिष्ट "त्याग" शब्द भी पारिभाषिक रूप से "कर्त्तव्यकर्म' अर्थ को ही बोधित करता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसे गीता में सुस्पष्ट किया है।[7] अर्थात् अपने कर्त्तव्यरूप कर्म को विधिपूर्वक सम्पन्न करना ही सर्वोत्तम त्याग है।

यज्ञ विज्ञान का आधिदैविक स्वरूप

यज्ञ विज्ञान का आधिदैविक स्वरूप (divine aspect) सृष्टि एवं जीवन के उस सूक्ष्म (subtle) और ज्योतिर्मय (enlightened) पक्ष के रहस्य से हमारा परिचय कराता है जो अभी तक आधुनिक विज्ञान की पहुँच से परे होते हुए भी स्थूल जगत् (physical world) के समस्त व्यवहार का निदान (मूल कारण) है। इसीलिए आधिभौतिक यज्ञ विज्ञान की परिभाषा से इसकी परिभाषा भी सर्वथा भिन्न बतलाई गई है। इस आधिदैविक यज्ञ की परिभाषा आरण्यक ग्रन्थ में "स एष वाचः चित्तस्य उत्तरोत्तरिक्रमो यद् यज्ञः" के रूप में श्रुत है।[8] अर्थात् आधिदैविक यज्ञ उसे कहते हैं जिसमें वाक् (speech) और चित्त (reasoning quality) का परस्पर चितिकरण (upward layering) अन्तःकरण (inner organ) के मूल केन्द्र (core centre) में करते हुए दोनों की व्यापक सत्ता (universal aspect of collective form) का स्वयं में अनुभव करना है।

संक्षेप में यदि इस पूरी वैज्ञानिक प्रक्रिया को देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि यह जो नाम रूपात्मक स्थूल जगत् है वह बहुत्व (plurality) के रूप में व्यवहृत है। संसार में अनगिनत चेतन अचेतन रूप पदार्थों के जितने नाम हैं वह सभी एक मूल वाक्-तत्त्व का विस्तार हैं। और इन सभी नाम युक्त पदार्थों के जो गुणात्मक अर्थ (qualitative power of action or meaning) हैं वे सभी एक कारणरूप क्रियाशक्ति (collective consciousness) के ही विस्तार रूप हैं। पुनश्च समस्त नामों के मूल वाक्तत्त्व और समस्त क्रियारूपों की मूल कारण-शक्ति को परस्पर अविनारूप (inseperable) पूर्ण भाव (collective form) में समझते और अनुभव करते हुए अभ्यास क्रम से बहुत्व से द्वित्व (duality) में प्रतिष्ठित होना ही आधिदैविक यज्ञ का तात्पर्यरूप स्वरूप है। इस स्थिति में उपासक (practicant) और समष्टि-रूप (collective) विश्व, ये दो ही पक्ष, दृष्टिगत (अनुभूत) होते हैं। इस स्थिति में भूत, वर्तमान तथा भविष्य से संबंधित सारी गतिविधियों को एक साथ देखने की क्षमता साधक में आ जाती है, यही ऋषिभाव है।

यज्ञ विज्ञान का आध्यात्मिक स्वरूप

यज्ञ विज्ञान के इस परमभाव में उपर्युक्त द्वित्व (द्वैत) भाव से क्रमशः अद्वैत भाव में प्रतिष्ठित होने का क्रम

निदर्शित होता है। इसी को मोक्ष (पूर्ण भेदरहित भाव) माना गया है, यही जीवन का पूर्ण भाव है। अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि आदि महावाक्यों से उपनिषदों में इसी का निरूपण किया गया है।

वेदोक्त मृत्यु एवं श्राद्ध विज्ञान

वेदों में मृत्यु का विज्ञान बड़ी ही सूक्ष्मता एवं विस्तार के साथ निरूपित हुआ है। इससे सम्बद्ध कतिपय विशिष्ट पक्ष संकेत बिन्दु के रूप में यहाँ विवेचित हैं। यथा लोक व्यवहार तथा आधुनिक विज्ञान में मृत्यु को जहाँ जीवन का अन्त समझा जाता है वहीं वेद में इसे जीवात्मा (embodied soul) के स्थूल शरीर से अलग होकर सूक्ष्म शरीर (subtle vital existence) के माध्यम से जीवन की अवशिष्ट (remaining) दिव्य सूक्ष्म सत्ता (divine subtle aspect) के साथ जुड़ने की एक विशिष्ट अवस्था माना गया है। इसके लिए व्यवस्थित व अत्यावश्यक योग्यता क्रम को प्राप्त करने के लिए "कर्त्तव्यरूप" कर्मों को निष्ठा से करते हुए, समय (time), स्थान (place) एवं क्रिया (action) से समन्वित दिव्य-शुचिता (high purification) को अपने में सतत भाव से स्थापित करना जरूरी है। इस प्रकार स्थूल शरीर से अलग होने के बाद अन्त्येष्टि संस्कार के माध्यम से संस्कारित अग्नि में प्रवेशरूपी द्वार से, तथा श्राद्ध संस्कारों के तेज से तृतीय जन्म को प्राप्त करके जीवात्मा दिव्य-जीवन में अग्रसर होता है। "त्रिजन्मा वै जायते पुरुषः" इस वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सभी स्त्री, पुरुष आदि के शरीरों से सम्बद्ध जीवात्मा जिसे निर्वचन-प्रक्रिया (etymological method) से वेदों में "पुरुष" शब्द से परिभाषित किया गया है, वह तीन जन्म के बाद दिव्य (सूक्ष्म) जीवन का अधिकारी बनता है। इसमें प्रथम जन्म माता-पिता से, द्वितीय जन्म शिक्षा-दीक्षा व कर्त्तव्यकर्म के सम्यक् पालन से तथा तृतीय जन्म विहित अग्नि में अन्त्येष्टि संस्कार से प्राप्त होता है।[9]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक विज्ञान वह अति समुन्नत विज्ञान है जिसके समस्त ज्ञान विज्ञान से सम्बद्ध सिद्धान्त और व्यावहारिक प्रक्रिया स्वरूपों को समझने के लिए, वैश्विक स्तर पर नवीनतम वैज्ञानिक स्रोतों के माध्यम से, मनीषी वैज्ञानिक क्रमशः समर्थ हो पा रहे हैं। हम अपनी इस ज्ञानमयी तथा दिव्य-विज्ञानमयी सम्पत्ति से अपने को समृद्ध करें, परिवार, समाज-राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व को वास्तविक सुख शान्ति व समृद्धि से जोड़ने में अग्रसर हों यही सर्वोत्तम सत्य-संकल्प का वितान वैदिक विज्ञान का प्रतिमान है।

संदर्भ

1. शुक्लयजुर्वेद, माध्यन्दिन संहिता 34-35
2. ऋग्वेद 10.71.6
3. श्रीमद्भगवद्गीता 6.17
4. कात्यायनश्रौतसूत्रम् 1.2.2
5. शतपथब्राह्मणम् 6.3.35-36
6. ऋग्वेद 10.129.2
7. श्रीमद्भगवद्गीता 18.9
8. ऐतरेयआरण्यकम् 2.3.15
9. शतपथ ब्राह्मणम् 11.2.1.1